Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 SISRRJ | Volume 1 | Issue 1 | ISSN : 2581- 6306

जैन दर्शन में वर्णित कर्म की उपयोगिता :एक अनुशीलन

इन्दल
शोधच्छात्र
बी.आर.डी.बी.डी.पी.जी. कालेज
आश्रम बरहज, देवरिया, उत्तर प्रदेश,भारत।

शोध सारांश– दर्शनों में कर्म–फल सिद्धान्त में गहरी समानता होने पर भी जैन दर्शन में मान्य कर्म के पौद्गलिक रूप को अन्य किसी भी दर्शन ने स्वीकार नहीं किया है। अन्य दर्शनों में यह क्रिया का पर्यायवाची है जबकि जैन दर्शन में यह क्रिया के साथ–साथ क्रिया का हेतु भी है जो पुद्गल रूप है और आत्मा के साथ बँधकर उसके दुःख और पारतन्त्र्य का कारण होता है। न केवल वैदिक एवं बौद्ध दर्शन, वरन् सांख्यादि षड्दर्शनों ने भी कर्म को पुद्गल रूप मानने पर जैन मत की पर्याप्त निन्दा एवं आलोचना की है।

मुख्य शब्द– जैन दर्शन, कर्म, फल, सिद्धान्त, पुद्गल, निन्दा, आलोचना।

जैन धर्म के तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ में आस्त्रव तत्त्व कर्म के आगमन का द्वारा है, अतः कर्म–सिद्धान्त को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, क्योंकि कर्म का सिद्धान्त जैन धर्म में ही मनुष्य के ऐच्छिक कर्मों पर विचार करके उनके सम्बन्ध में शुभ–अशुभ, उचित–अनुचित के निर्णय हेतु मापदण्ड देता है। कर्म सिद्धान्त का तात्पर्य है कि मनुष्य के सभी ऐच्छिक कर्मों का कुछ न कुछ अच्छा–बुरा फल अवश्य होता है और प्रत्येक जीव को अपने कर्मों का फल स्वयं ही अवश्य भोगना पड़ता है। जिस जीवन को हम इस समय भोग रहे है वह पूर्व जन्म में किये गये कर्मों का परिणाम है; वह बिना कारण उद्भूत नहीं है। कर्म–सिद्धान्त के अनुसार विश्व में यदृच्छा के लिये कोई स्थान नहीं है वरन् सर्वत्र नैतिक सुव्यवस्था का साम्राज्य विराजमान है। प्रायः सभी दर्शनों के कर्म–सिद्धान्त को स्वीकार किया है। मनुष्य का समस्त उत्थान–पतन उसके अपने

कर्मों पर ही निर्भर करता है। जैन दर्शन में भी कर्म की अत्यन्त सूक्ष्म एवं मौलिक व्याख्या मिलती है।

अन्य दर्शनों के समान जैन दर्शन भी कर्म के मौलिक अर्थ 'क्रिया' को स्वीकारते हुए मानता है कि जीव मन, वचन, काय द्वारा जो भी करता है, वह उसका कर्म है। परन्तु जहाँ अन्य दर्शन इसे ही कर्म मानते है, जैन दर्शन इसे कर्म का अर्द्धभाग मात्र मानता है। वह इस क्रिया को जीव कर्म या भाव कर्म कहता है। इस भाव कर्म से प्रभावित अथवा आकर्षित होकर कुछ जड़ (पुद्गल) स्कन्ध, जीव के प्रदेशों में प्रवेश करते हैं और कषाय के कारण आत्मा (चेतनतत्त्व) से मिल जाते है। आचार्य उमास्वामी कहते हैं कि जीव सकषाय होने से कर्मयोग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, यही बन्ध है।[प] ये पुद्गल स्कन्ध द्रव्यकर्म कहलाते है। ये रूप रसादि धारक मूर्तिक होते हैं। अत्यन्त सूक्ष्म होने से ये दिखायी नहीं देते। आत्मा द्वारा प्राप्य होने से क्रिया को कर्म कहते है और उस क्रिया के निमित्त से परिणमन विशेष प्राप्त पुद्गल भी कर्म है। ये कर्म कुछ काल बाद परिपक्व अवस्था को प्राप्त होकर उदय में आते हैं। उस समय इनके प्रभाव से जीव के ज्ञानादि गुण तिरोभूत हो जाते हैं। यही इनका फलदान कहा जाता है।

कर्म ही बन्ध और आस्रव रूप है। आचार्य उमास्वामी ने कर्म और बन्ध को एक ही माना है– ''सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्ध।''[पप] अर्थात् जीव सकषाय होने से कर्मयोग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, यही बन्ध है।

आचार्य अकलंक ने इस सूत्र की व्याख्या में कहा है[पपप] कि 'कर्मणो योग्यान्'– इस पृथक् विभक्ति से दो पृथक् वाक्यों का ज्ञापन होता है– प्रथम, कर्म से जीव सकषाय होता है और द्वितीय, कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है। 'कर्म पौद्गलिक है' यह 'पुद्गल' शब्द से सूचित होता है। 'आदत्ते' का आशय है– ग्रहण करता है अर्थात् बन्ध का अनुभव करता है। 'यही बन्ध है, अन्य नहीं', यह स्पष्ट करने के लिये 'स' शब्द का प्रयोग किया गया है।

मन–वचन–काय के परिस्पन्द या क्रिया को योग कहते हैं,[पअ] यह योग[अ] आस्रव है।[अप] जैसे जलागमन द्वार से जल आता है, वैसे ही योग द्वारा आत्मा में कर्म आते हैं अतः इस योग को आस्रव कहते है। कषाय के कारण आत्मा कर्म को उस प्रकार आकृष्ट करता है जैसे लगे शरीर पर धूल आकृष्ट होती है या जैसे गर्म लौहपिण्ड चारों ओर से जल को खींच लेता है।[अपप]

कर्मों के भेद उनके कार्यों के आधार पर किये गये हैं कर्म का सामान्य कार्य है– आत्मा के संसार में आबद्ध रखना। विशेष रूप से देखा जाये तो कार्य भिन्न–भिन्न हैं। मूल रूप से इन कार्यों को आठ वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। अतएव कर्म के मूल भेद आठ हैं, जिन्हें जैन दर्शन में कर्म की मूल–प्रकृतियाँ कहा गया है।[अपपप] आचार्य अकलंक ने इन्हीं को बन्ध की मूल प्रकृति भी कहा है।[पग] ये इस प्रकार हैं–

1. ज्ञानावरणीय कर्म– जीव चैतन्यमय है, उपयोग उसका लक्षण है।[ग] उपयोग ज्ञान और दर्शन का संग्राहक है।[गप] जिस कर्म के प्रभाव से ज्ञानोपयोग आच्छादित रहता है, वह ज्ञानावरणीय कर्म है। जैसे आँखों पर लगी हुई कपड़े की पट्टी देखने में बाधा डालती है, उसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म आत्मा के पदार्थ–ज्ञान में बाधा डालता है।[गपप]

2. दर्शनावरणीय कर्म– पदार्थों की विशेषता को ग्रहण किये बिना केवल उनके सामान्य धर्म का बोध करना दर्शनोपयोग है। जिस कर्म के प्रभाव से दर्शनोपयोग आवृत्त होता है, उसे दर्शनावरणीय कर्म कहते है। दर्शन गुण के सीमित होने पर ज्ञानोपलब्धि का द्वार बन्ध हो जाता है। अतः इस कर्म की तुलना द्वारपाल से की गयी है।[गपपप] जैसे द्वारपाल राजा के दर्शन में बाधा डालता है, उसी प्रकार यह कर्म पदार्थों के सामान्य बोध में बाधा डालता है अर्थात् आत्मा की दर्शन–शक्ति को प्रकट नहीं होने देता।

3. वेदनीय कर्म– जिस कर्म से जीव को सुख–दुःख का वेदन या अनुभव होता है, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। यह कर्म आत्मा के अव्याबाध गुण को आवृत्त करता है।

4. मोहनीय कर्म – जो कर्म आत्मा को मोहित करता है अथवा मूढ़ बनाता है, वह मोहनीय कर्म है। इस कर्म के कारण जीव मोह ग्रस्त होकर संसार में भटकता है। मोहनीय कर्म संसार का मूल है। अन्य सभी कर्म मोहनीय के अधीन है। मोहनीय कर्म राजा है तो शेष सात कर्म प्रजा हैं। जिस प्रकार राजा या सेनापति के मरते ही सारी सेना भाग जाती है, उसी प्रकार एक मोहकर्म के नष्ट होते ही शेष सारे कर्म नष्ट हो जाते हैं।[गपअ] समस्त दुःखों की प्राप्ति मोहनीय कर्म से ही होती है। इसके उदय से जीव बार–बार जन्म–मरण को प्राप्त होता हैं, इसीलिये इसे अरि या शत्रु भी कहते हैं।

5. आयु कर्म – जीव के किसी विवक्षित शरीर में रहने की अवधि का नाम आयु है। इस आयु का निमित्तभूत कर्म 'आयु कर्म' कहलाता है। जीवों के जीवन की अवधि का नियामक आयु कर्म है। इस कर्म के अस्तित्व से प्राणी जीवित रहता है तथा क्षय होने पर मृत्यु को प्राप्त होता है।[गअ]

6. नाम कर्म– इस कर्म से जीव में गति आदि के भेद तथा देहादि की भिन्नता होती है।[गअप]

इस कर्म की तुलना चित्रकार से की गयी है। एक कुशल चित्रकार की तरह यह कर्म चारों गतियों के जीवों की शरीर रचना करता है। विश्व की विचित्रता में नाम–कर्म रूपी चितेरे की कला अभिव्यक्त होती है।[गअपप]

7. गोत्र कर्म– जिस कर्म के उदय से जीव की उत्पत्ति किसी कुल या गोत्र विशेष में होती है, उसे गोत्र कर्म कहते हैं।

गोत्र कर्म की तुलना कुम्हार से की गयी है। कुम्हार अनेक घट बनाता है, उनमें से कई तो मंगल कलश बनाकर पूजन के काम आते हैं और कई मदिरा आदि रखने से हेय माने जाते हैं। उसी प्रकार गोत्र कर्म के कारण जीव श्लाध्य अथवा अश्लाध्य कुल में उत्पन्न होता है।[गअपपप]

8. अन्तराय कर्म– इसका दूसरा नाम विघ्न–कर्म है। यह कर्म आत्मा की वीर्यशक्ति का घात करता है। आत्मा में असीम सामर्थ्य है, किन्तु अन्तराय कर्म के कारण वह शक्ति कुण्ठित हो जाती है।

इस कर्म की तुलना राजा के भण्डारी से की गयी है।[गपग] जिस प्रकार राजा के आदेश देने पर भी भण्डारी दान देने में आनाकानी करता है या विघ्न डालता है, उसी प्रकार कर्म भी दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में बाधा डालता है।[गग]

जैन दर्शन में आत्मा अरूपी, अमूर्तिक व शुद्ध चैतन्य रूप है और कर्म रूपी, मूर्तिक व जड़ पुद्गलरूप है। दोनों दो विजातीय तत्त्व है। ऐसी अवस्था में सहज जिज्ञासा होती है कि दोनों का सम्बन्ध किस प्रकार हो सकता है? गहराई से चिन्तन करने पर आत्मा और पुद्गल के तीन रूप प्राप्त होते हैं– (1) शुद्ध आत्मा, (2) शुद्ध पुद्गल, (3) दोनों का सम्मिश्रण, जो संसारी आत्मा या जीव में है। कर्म का सम्बन्ध इसी संसारी आत्मा से होता है। संसारी आत्मा शुद्ध चेतन नहीं है, उसमें किंचिद् मूर्त जड़ अंश मिश्रित होता है।

सभी आस्तिक दर्शनों में कर्म का सिद्धान्त अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है, परन्तु जैन दर्शन में इसका महत्त्व इसलिये और अधिक हो जाता है क्योंकि कर्म ही एकमात्र ऐसी कड़ी है जिससे जैन दर्शन के सातों तत्त्व– जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष परस्पर जुड़े रहते हैं। जीव चेतन द्रव्य है। उसी की क्रिया या योग से अजीव पुद्गल कर्मशील होता है। जीव और कर्म–पुद्गल का परस्पर योग बन्ध है। नवीन कर्मों का आगमन आस्रव है। इस दृष्टि से कर्म ही बन्ध और आस्रव है।[गगप] तपादि द्वारा नवीन कर्मों के आगमन को रोक देना संवर है तथा पूर्वार्जित कर्मों का क्षय निर्जरा है। सभी कर्मों का आत्यन्तिक क्षय ही मोक्ष है। सम्पूर्ण जैन नीतिशास्त्र का एक ही उद्देश्य है कि किस प्रकार जीव, कर्मों के आस्रव एवं बन्ध को रोककर संवर तथा निर्जरा द्वारा मोक्ष की प्राप्ति करें।

वैदिक नीतिशास्त्र की भाँति जैन नीतिशास्त्र भी मानता है कि जीव को अपने किये गये कर्मों का फल अवश्य मिलता है। इस सम्बन्ध में वैदिक, जैन एवं बौद्ध मतों में अद्भुत साम्य मिलता है। प्रायः सभी भारतीय दर्शनों ने कर्म, अदृष्ट, अपूर्व आदि ऐसे सिद्धान्त को स्वीकार किया है जो आत्मा के शुद्ध रूप को आवृत्त कर देता है। वेदान्त ने इसे 'माया' या 'अविद्या' कहा है।[गगपप] बौद्ध दर्शन में कर्म को 'वासना' और 'अविज्ञप्ति' कहा गया है। सांख्य दर्शन ने इसे 'प्रकृति' या 'संस्कार' की संज्ञा दी है। योग दर्शन में इसके लिये 'कर्म–आशय' या 'क्लेश' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। वैशेषिक दर्शन द्वारा प्रयुक्त 'धर्माधर्म', शैव दर्शन का 'पाश' तथा मीमांसा का 'अपूर्व' आदि 'कर्म' शब्द के समानार्थी हैं।[गगपपप]

दर्शनों में कर्म–फल सिद्धान्त में गहरी समानता होने पर भी जैन दर्शन में मान्य कर्म के पौद्गलिक रूप को अन्य किसी भी दर्शन ने स्वीकार नहीं किया है। अन्य दर्शनों में यह क्रिया का पर्यायवाची है जबकि जैन दर्शन में यह क्रिया के साथ–साथ क्रिया का हेतु भी है जो पुद्गल रूप है और आत्मा के साथ बँधकर उसके दुःख और पारतन्त्र्य का कारण होता है। न केवल वैदिक एवं बौद्ध दर्शन, वरन् सांख्यादि षड्दर्शनों ने भी कर्म को पुद्गल रूप मानने पर जैन मत की पर्याप्त निन्दा एवं आलोचना की है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ''सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानाक्ष्ते स बन्धः।''
   ं्प –तत्त्वार्थसूत्र – 8.2
2. तत्त्वार्थसूत्र – 8.2
3. राजवार्तिक– 8.2.2–8
4. ''कायवांगमनःकर्म योगः।'' – तत्त्वार्थसूत्र – 6.1
5. योग का अर्थ समाधि और ध्यान भी होता है परन्तु यहाँ केवल 'क्रियारूप' अर्थ ग्रहण किया गया है।– राजवार्तिक–6.1.12
6. ''स आस्रवः।'' – तत्त्वार्थसूत्र – 6.2
7. राजवार्तिक–6.2.4–5
8. ''आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायः।''– तत्त्वार्थसूत्र –8.4
9. राजवार्तिक–8.4.1
10. ''उपयोगो लक्षणम्।'' – तत्त्वार्थसूत्र – 2.8
11. ''जीवो उवओगमओ, उवओगो णाणदंसणो होई।'' –नियमसार–10
12. जैन तत्त्वविद्या– पृष्ठ 327
13. जैन तत्त्वविद्या– पृष्ठ 328
14. जैन तत्त्वविद्या– पृष्ठ 329
15. राजवार्तिक–8.10.2
16. ''गदिआदि जीवभेदं देहादी पोग्गलाण भेदं च।
    ं्प गोम्मटसार, कर्मकाण्ड–12
17. स्थानांग–2.4.105
18. ''जह कुंभारो भंडाइं कुणइ पुज्जेराइं लोयस्स।
    ं्प इय गोयं कुणइ जियं, लेए पुज्जेयरानत्थं।।''–स्थानांग–2.4.106
19. स्थानांग–2.4.105
20. पंचाध्यायी–1007
21. तत्त्वार्थसूत्र– 6.2, 8.2
22. ब्रह्मसूत्र, शांकर भाष्य– 2.1.14
23. द्रष्टव्य– डा0 रतन लाल जैन– 'जैन कर्म–सिद्धान्त और मनोविज्ञान', पृष्ठ 4–5